International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(6): 215-217

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(6): 215-217
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 12-10-2023
Accepted: 13-11-2023

धनञ्जय कुमार
पीएच. डी. (शोधार्थी), संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
धनञ्जय कुमार
पीएच. डी. (शोधार्थी), संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

भीमप्रबन्धमहाकाव्य में अलंकार एवं रस विमर्श

धनञ्जय कुमार

सारांश
संस्कृत कवियों की भाषा शैली सम्पूर्ण विश्व के साहित्य में अपनी साख रखती है। वैदिक ऋषियों से पुराणों के रचनाकार महर्षियों तथा उसके उपरान्त उनका ही अनुशीलन करने वाले कालिदास, भारवि आदि ऐसे रचनाकार है जिनका कोई प्रतिद्वन्दी साहित्य की दृष्टि से पूरे विश्व में उत्पन्न नहीं हो सकता। उन्हीं ऋषि कवियों का अनुशीलन करते हुये श्री हरिवंश भट्ट ने अपने काव्य को गति प्रदान की है। भीमप्रबन्ध महाकाव्य एक ऐतिहासिक महाकाव्य है, इस महाकाव्य के नायक महाराजा भीम है। जिनके प्रबन्ध (राज व्यवस्था सम्बन्धी प्रबन्ध व्यवस्था) पर आधारित काव्य होने से यह काव्य भीमप्रबन्ध कहा गया है। इस महाकाव्य में जोधपुर के राजाओं का वंश चरित्र जोधपुर (मारवाड़ राज्य) के तात्कालिक अन्य क्षेत्रों के सरदारों व ठाकुरों का वर्णन किया है।

कूटशब्द : साहित्य, महाकाव्य, भीमप्रबन्ध, कालिदास

प्रस्तावना
प्रस्तुत शोध पत्र भीमप्रबन् महाकाव्य का रस एवं अलंकार विषयक अनुशीलन करता है जिसपर सर्वेक्षण के परिणामस्वरूप अन्वेषण कार्य की अत्यल्पता ज्ञात होता है। इसलिए विषय की स्पष्टीकरण हेतु उक्त शोध-विषय को शोधार्थी द्वारा चद्वारकिया गया है, जिसका महत्त्व एवं औचित्य के सकारात्मक है।

अलंकार : भीम प्रबन्ध महाकाव्य में अलंकारों का यथास्थान प्रयोग किया गया है जिसमें प्रमुखता से उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, यमक आदि का प्रधानत्ता पूर्वक प्रयोग किया गया है।

उत्प्रेक्षा अलंकार

यो विस्मितो वै बहुधर्म्मकश्च वातायनानां च बलीककानामम्।
मिषेण वै गूढवपुहिमांशुः सौधेषु चागत्य ददर्श कांतिम्।।[1]

गवाक्षको मौक्तिक सौधकस्य यः सर्व सौधोपरि रोचमानः।
बहिर्गवाक्षेश्च चतुर्षुदिसु सहेमश्रृंगैः दिवमाश्लिषद्भैः॥[2]

उपमा अलंकार

उपमान तथा उपमेय का भेद होने पर दोनों के गुण, क्रिया, धर्म का वर्णन उपमा अलङ्कार कहलाता है।[3]

यथा परं वै शिविकाधिपोऽयं विराजते देव गवाक्ष तुल्यः।
वैडूर्य मुक्तामणि रत्नविद्धो युक्तोऽपरं मौक्तिक जालिकाभिः॥[4]

प्रस्तुत पद्य में देवगृहों की खिड़कियां उपमान, शिविकाएँ उपमेय तथा सुन्दर साधारण धर्म है।

रेजुर्महोक्षैरपि योत्कृतानि रथानि चाश्वेर्द्विरदैर्यहोष्ट्रैः ।
महेन्द्रहर्म्याणि चराणि तद्वत् सेंद्रैश्च देवादिभिराश्रितानि ॥[5]

प्रस्तुत पद्य में इन्द्र के महल उपमान, राजा भीम के महल उपमेय तथा वैभव साधारण धर्म है।

यमक अलंकार

अर्थ होने पर भिन्न-भिन्न अर्थ वाले वर्ण-समुदाय का पूर्वक्रम से ही आवृति यमक अलङ्कार कहलाता है।[6]

संबधिनं चैव किसोरसिंह वाहिडंकस्यापि च सूनुसूनुम्।
तं गाजसिंह सुरताणसिंह सभ्रात् सूनुं रमयां बभूव ।।[7]

प्रस्तुत पद्य में 'सूनु' शब्द की आवृति हुई है, अतः यमक अलङ्कार प्रकृति है।

स्वर्णात्मकैर्वा रजतात्मकैर्वा सुवारियंत्रैः ह्यपि चर्मकोशैः।
पुनर्बभूवे परवासकेन मृषामृघं चैव चमू चराणाम्।।[8]

प्रस्तुत पद्य में 'आत्मकैर्वा' शब्द की आवृति हुई है, अतः यमक अलङ्कार है।

रस परिपाक : श्री हरिवंश भट्ट ने अपने काव्य में रसोत्पत्ति हेतु वीर व प्रकृति चित्रण का सहारा लिया है। ऐतिहासिक ग्रन्थ होने से वंशावली के लेखन समय में कवि ने तात्कालिक आर्य राजाओं की वीरता का सुन्दर चित्रण किया है। उनकी वीरता के प्रसंग के समय कवि के श्लोकों में वीर अंगीरस है। का चित्रण कहते समय शान्त रस तथा अन्य राज प्रासादों के वर्णन में अद्भुत रस दिखाई देता है। वसन्तोत्सव के वर्णन के समय तथा राजा द्वारा भ्रमण आदि के समय शृंगार रस भी काव्य में दिखाई पड़ता है। परन्तु कवि का शृंगारिक वर्णन मर्यादित है । ग्रन्थ के प्रारम्भ के कई श्लोक देवस्तुतियों से ओत-प्रोत हैं जो कवि भाव को दर्शाता है। अतः काव्य में भाव भी व्याप्त है।

वीर रस

उत्तम पात्र (धीरोदात्त रूप) में आश्रित वीर रस होता है। इसका स्थायी भाव उत्साह, देवता महेन्द्र और रंग सुवर्ण होता है।[9] इसमें विजेतव्यादि (रावणादि) (यहाँ आदि पद से कर्त्तव्य,कर्म का ग्रहण होता है युद्धवीर में विजेतव्य प्रतिपक्षी है, दानवीर में दान के पात्र विप्रादि, धर्मवीर में धर्म और दयावीर में दुःस्थितादि।) आलम्बन विभाव होते हैं और उनकी चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव होते हैं उसमें युद्ध के सहायक का अन्वेषणादि इसका अनुभाव है।[10] मति, धैर्य, गर्व, स्मृति, तर्क रोमाञ्च आदि इसके व्यभिचारी भाव हैं।

शूरो महांश्चैव हि शूरसिंहो जित्वा च सर्वान् यवनाधिपाश्च।
तथैव जित्वाह्यपि दक्षिणात्यान् नाना विधं वै धन माजहार ।।[11]

प्रस्तुत पद्य में शूरवीर शूरसिंह नाम वाले राजा आलम्बन विभाव है शूरसिंह द्वारा म्लेच्छ राजाओं को जीतना, जीतकर बहुत सा धन एकत्रित करना उद्दीपन विभाव है। म्लेच्छ राजाओं का पराक्रम का भी नहीं टिकना अनुभाव है और धैर्य, गर्व आदि व्यभिचारी भाव है। इन सभी से अभिव्यक्त उत्साह नामक स्थायीभाव वीर रस के रूप मे पुष्ट होकर आस्वादनयोग्य होता है।

अद्भुत रस

अद्भुत रस का स्थायी भाव 'विस्मय', देवता 'गन्धर्व' तथा वर्ण 'पीत' माना जाता है।[12] इसका आलम्बन विभाव अलौकिक वस्तु होती है। इन अलौकिक वस्तुओं के गुणों का वर्णन उद्दीपन विभाव होता है।[13] इसका अनुभाव स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, गदगद स्वर, सम्भ्रम और नेत्रविकास आदि होते हैं तथा इसके व्यभिचारी वितर्क, आवेग, भ्रांति, हर्ष आदि होते हैं।[14]

तस्योपरिष्टाद् हेमशृंगैस्त्रादशैश्चैव च शोभमानम्।
तन्मंदिरं चोत्तर सन्मुख च तद्धेम चित्रैरपि चित्रितं च।।[15]

प्रस्तुत पद्य में मन्दिर आलम्बन विभाव है। मन्दिर के ऊपर भाग पर सोने के तेरह शिखर, अनेक चित्रों से चित्रित उद्दीपन विभाव है। रोमाञ्च, सम्भ्रम आदि अनुभाव हैं और हर्ष, धृति आदि व्यभिचारी भाव हैं। इन सभी से अभिव्यक्त विस्मय नामक स्थायी भाव अद्भुत रस के रूप में पुष्ट होकर आस्वादन योग्य हो जाता है।

यदा महाराजगजाधिरूढः विचित्रवेषाभरणादियुक्तः ।
क्रीड़ामनाश्चैव वसंतकाले श्रियं महेन्द्रस्य तिरश्चकार ॥[16]

प्रस्तुत पद्य में महाराज भीम आलम्बन विभाव है। इन्द्र की शोभा को भी तिरस्कृत कर देना उद्दीपन विभाव है। रोमाञ्च आदि अनुभाव हैं और हर्ष, धृति आदि व्यभिचारी भाव हैं। इन सभी से अभिव्यक्त विस्मय नामक स्थायी भाव अद्भुत रस के रूप में पुष्ट होकर आस्वादन योग्य हो जाता है।

भाव

देव आदि[17] विषयक रति और व्यभिचारिभाव 'भाव' कहलाते हैं।[18] प्रस्तुत ग्रन्थ में 'भाव-विषयक' रति के अनेक उदाहरण मिलते हैं जो निम्नलिखित हैं –

गणेश्वरं चरमेश्वरं च सरस्वतीं च उमेश्वरं च ।
नत्वा प्रवक्ष्यसे हि नराधिपानामजीत सिंहस्य कुलोद्भवाम्॥[19]

प्रस्तुत पद्य में श्री गणेश, विष्णु, सरस्वती, शिव जी आलम्बन विभाव है, श्री गणेश आदि का सौन्दर्य उद्दीपन विभाव है। स्तवन करना अनुभाव है, स्मरण व्यभिचारी भाव है। गणेश आदि विषयक भाव की अभिव्यक्ति होती है और सहृदय सामाजिक भाव-मग्न हो जाते हैं।

गणपतिं हिमशैलं सुतात्मजं प्रणतपाल सुरेश्वर सेवितम्।
भजत् विघ्नहरं प्रणतार्त्तिहं प्रथमात्ममनोरथ सिद्धये ॥[20]

प्रस्तुत पद्य में श्री गणेश जी आलम्बन विभाव है, विघ्नहर्ता आदि श्री गणेश का गुण उद्दीपन विभाव है। श्री गणेश जी का स्तवन करना अनुभाव है, स्मरण व्यभिचारी भाव है। गणेश-विषयक भाव की अभिव्यक्ति होती है और सहृदय सामाजिक भाव-मग्न हो जाते हैं।

दानाम्बुरेखोपरि संस्थिताञ्च भृंगावलिर्यस्य विभाति कण्ठे ।
तत्वात्मिका जीवनिदानभूता रुद्राक्षमालेव विनायकोऽव्यात्।।[21]

प्रस्तुत पद्य में श्री गणेश जी आलम्बन विभाव है, मदजल की रेखा के ऊपर मंडराती हुई भौरों की पंक्ति से सुशोभित हुई, सम्पूर्ण प्राणियों के विघ्नों को दूर कर कल्याण करने वाले आदि श्री गणेश का कीर्ति उद्दीपन विभाव है। श्री गणेश जी का स्तवन करना अनुभाव है, स्मरण व्यभिचारी भाव है। गणेश-विषयक भाव की अभिव्यक्ति होती है और सहृदय सामाजिक भाव-मग्न हो जाते हैं।

निष्कर्षत

स्पष्ट होता है कि- अलंकार और रस विमर्श की दृष्टि से यह विषय औचित्यपूर्ण है साथ ही उपर्युक्त विषय सुधीजन के अन्वेषण और अध्ययन की समझ में अनुकूलता प्रदान करेगा।

सन्दर्भ

1. भीमप्रबन्धमहाकाव्यम् १८/६८
2. भीमप्रबन्धमहाकाव्यम् १८/८६
3. साधर्म्यमुपमा भेदे । का. प्र., सूत्र १०/१२४
4. भीमप्रबन्धमहाकाव्यम् ६/२३
5. भीमप्रबन्धमहाकाव्यम् ६/४५
6. अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः । का. प्र., सूत्र ९/११६
7. भीमप्रबन्धमहाकाव्यम् ६/३५
8. भीमप्रबन्धमहाकाव्यम् ७/३५
9. उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावकः ।
10. महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः ।। सा. द. ३/२३२
11. विजेतव्यादिचेष्टाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः ।
12. अनुभावास्तु तत्र स्युः सहायान्वेषणादयः ।। वही ३/२३३
13. भीमप्रबन्धमहाकाव्यम् १/१८
14. अद्भुतो विस्मयस्थायिभावो गन्धर्वदैवतः । सा. द. ३/२४२
15. पीतवर्णो, वस्तु लोकातिगमालम्बनं मतम् ।
16. गुणानां तस्य महिमा भवेदुद्दीपनं पुनः ।। वही ३/२४३
17. स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चगद्गदस्वरसंभ्रमाः ।
18. तथा नेत्रविकासाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः ।। वही ३/३४४
19. भीमप्रबन्धमहाकाव्यम् २०/४३
20. भीमप्रबन्धमहाकाव्यम् ७/९
21. आदिशब्दान्मुनिगुरुनृपपुत्रादिविषया । का. प्र. ४/३५ वृत्ति
22. रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाऽञ्जितः भावः प्रोक्तः । वही ४/३५
23. भीमप्रबन्धमहाकाव्यम् १/१
24. भीमप्रबन्धमहाकाव्यम् १/५
25. भीमप्रबन्धमहाकाव्यम् ३/१